



Hari Om

Avaihan is a bilingual and bimonthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

Editor: Swami Yogamaya Saraswati **Assistant Editor**: Swami Sivadhyanam Saraswati

Published by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811 201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2014

Membership is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

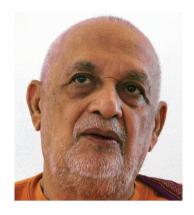
Sannyasa Peeth

c/o Ganga Darshan Fort, Munger, 811 201 Bihar, India

☑ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

Front cover: Guru Poornima, Paduka Darshan, Munger

Plates: 1 & 4: Swami Sivananda Saraswati; 2 & 5: Swami Satyananda Saraswati; 3: Swami Niranjanananda Saraswati; 6: Guru Paduka Poojan, Rikhia; 7: Guru Paduka Poojan, Munger; 8: Guru Pooja, Satyam Udyan, 2011



SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

The disciple is the fulfilment of the guru's wisdom. The guru is like a beautiful rose plant and the disciple is the blooming rose. On the physical plane the disciple and guru inhabit different bodies, and for a long time the sadhana of the disciple is to use the physical body. But if the disciple can make himself competent for fulfilling the aspirations of the guru, then he can be the best expression of the knowledge of the guru.

-Swami Satyananda

शिष्य गुरु के ज्ञान की पूर्णता है। वह गुरु रूपी पौधे पर खिलने वाला सुन्दर गुलाब का फूल है। शारीरिक स्तर पर शिष्य गुरु से भले ही भिन्न हो और लम्बे समय तक शिष्य की साधना भले ही भौतिक स्तर पर क्रियान्वित हो, लेकिन अगर शिष्य गुरु के संकल्पों को साकार करने लायक बन सके तो वह अपने गुरु के ज्ञान की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हो सकता है।

—स्वामी सत्यानन्द

Published and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811 201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.

Owned by Sannyasa Peeth Editor: Swami Yogamaya Saraswati



Avahan

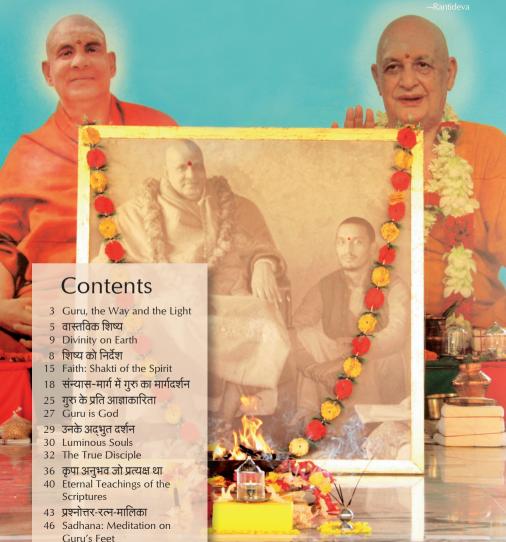
आवाहन

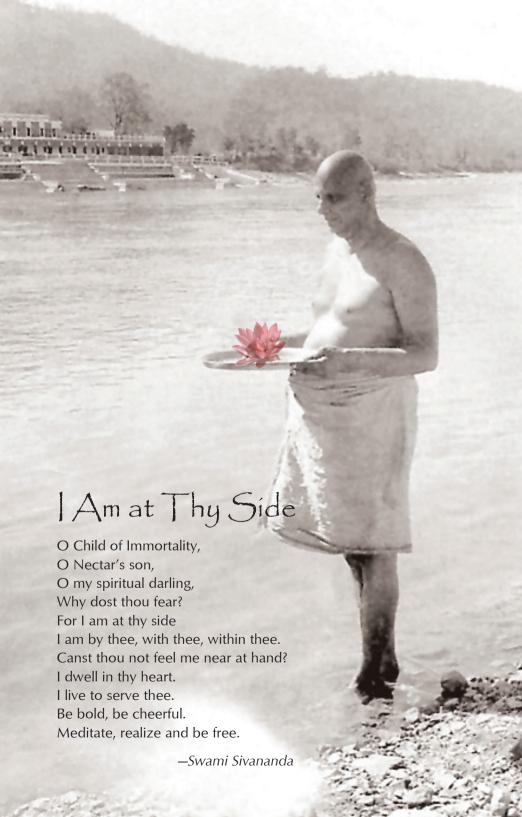
Year 3 Issue 4 • July-August 2014

of the sale of the sale

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others.





Guru, the Way and the Light

Swami Sivananda Saraswati

The heartfelt worship and adoration of gurus or spiritual teachers marks the pre-eminently universal outlook of the Indian mind and the full maturity of Indian culture. Only the Supreme Spirit can be universal, and only the aspiration to realize this spirit can foster a universal outlook on life. The spiritual preceptors are the links in the long chain that bind the aspiring individual to the eternal ideal before him. Sages of spiritual realization and experience bring together reality and phenomena and connect God and man in a relation that exceeds human understanding. The *Mundaka Upanishad* asserts that one who wishes to attain supreme prosperity should worship the knower of the Self.

The worship of the guru is an indication of the desire to commune with him. The adoration of the guru is the beginning of the tendency to aspire for the experience of universality of spirit. The gurus are teachers of wisdom, and the way in which they impart their knowledge is unique. Dakshinamurti accomplished his teaching through symbol and silence. Some communicate wisdom through a mere glance, a simple touch or through a single word. To the middling type of aspirant, they detail through speech the nature of Truth. But the art of imbibing wisdom through the words of the guru is secondary when compared with the primary method of learning directly from the way in which the guru personally lives the impersonal reality. Example is the greatest precept. The character, the behaviour, the conduct of the guru should be a daily inspiration to the disciple. None can teach better than by personally living and practising the right, the true and the good. The guru reflects in his being the super-sensible fact of the unlimited divine principle.

As Guru Poornima is an occasion of *guru pooja*, or worship of the spiritual preceptor, and as worship is impossible

without aspiring to partake of the qualities of the worshipped, the precondition of the celebration of Guru Poornima is the determination to become good and do good at all times. Correct understanding, non-attachment to worldly things, serenity of mind, restraint of the senses, absence of base passions, faith in the guru and devotion to the supreme ideal are necessary equipment with which one has to approach the guru. The disciple should sincerely wish that he may be enabled to live up to the noble virtues which the guru stands for and embodies. Only with perfect purity of heart can the divine man be adored in the best possible way.

The highest form of worship of guru is meticulous practice of his teachings and living by his example. The guru is pleased not so much with another as with one who strives like himself in virtue and knowledge. Guru pooja is to become verily *Bhagavat pooja*, the worship of God, for guru is God in visible form.

May Sri Guru Poornima open to you all the door to a new life of purity, right conduct and divine aspiration. Look upon the world as the rich manifestation of the infinite glory of the Lord. Let difference-less love be your motto and let motiveless service be your law. Let charity adorn your hands and let mercy and sympathy beautify your thoughts. Purify your mind through sankirtan, bhajan, devotion and meditation. Concentrate your consciousness on God. Merge your being in His consciousness. Here is your prosperity, here is freedom and here is salvation supreme.

May you all utilize the blessed occasion of Guru Poornima in prayer, worship and meditation and thus prepare the way for your happiness and emancipation. May the grace of the Brahma vidya gurus be upon you all!



वास्तविक शिष्य

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सच्चा शिष्य वह है जो गुरु के निर्देशों का अक्षरश: पालन करता है। वह अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक लोगों के बीच अपने गुरु की शिक्षा का प्रचार-प्रसार करता है। उसका सम्बन्ध केवल अपने गुरु की दिव्य प्रकृति से होता है, उनके मानवीय क्रिया-कलापों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनकी तरफ वह तनिक भी ध्यान नहीं देता। यदि गुरु अतर्कसंगत कार्य करते हैं, तो भी उसके लिए वे गुरु ही हैं। यह हमेशा याद रखिये कि सन्त का जीवन बहुत गूढ़ और गहन होता है। उन्हें आँकने-समझने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, अपने अज्ञान के लघु मापदण्ड से उनकी दिव्य प्रकृति को मापने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

वास्तिवक शिष्यत्व से दृष्टि खुलती है, आध्यात्मिक अग्नि प्रदीप्त होती है, सुषुप्त प्रतिभा जाग्रत होती है। आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करने वाले के लिए यह सबसे जरूरी चीज है। इससे गुरु एवं शिष्य में एकात्मकता स्थापित होती है। शिष्य को गुरु का आशीर्वाद, मार्ग-दर्शन एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। वे शिष्य में अपनी आध्यात्मिक शिक्त का संचार करके उसके स्वभाव को रूपान्तरित करते हैं, आध्यात्मिक बनाते हैं।

सही समझ, सांसारिक वस्तुओं में अनासिकत, मानिसक शान्ति, इन्द्रिय-संयम, तुच्छ वासनाओं का अभाव, गुरु में विश्वास एवं ईश्वर-भिक्त कुछ ऐसे आवश्यक साधन हैं, जिनसे युक्त होकर शिष्य को गुरु के पास जाना चाहिए। ऐसे गुणों से युक्त साधक को ही गुरु आध्यात्मिक निर्देश देते हैं। जब शिष्य का मन वासनारिहत हो जाता है तभी ब्राह्मी रहस्यों की दीक्षा फलीभूत होती है तथा उसमें जान का उदय होता है।

गुरु-सेवा

प्रारम्भ में प्रत्येक साधक को अपना पूरा ध्यान दीर्घकालिक गुरु-सेवा में लगाना चाहिए। दिव्य-भाव से अपने गुरु की सेवा कीजिए। इससे आपके स्वार्थपरक, अहंकारी व्यक्तित्व का कैंसर समाप्त हो जाएगा।

समुद्री जहाज का कप्तान या ऑपरेशन-कक्ष में कार्यरत शल्यचिकित्सक हमेशा सावधान रहता है। इसी प्रकार एक ज्ञानिपपासु शिष्य को सदैव गुरु-सेवा में सतर्क एवं तल्लीन रहना चाहिए। गुरु-सेवा ही आपके जीवन का आधार होना चाहिए। सदा अवसर की ताक में रहें। आदेश की प्रतीक्षा न करें। गुरु-सेवा हेतु स्वेच्छापूर्वक स्वयं को अर्पित करें।



नम्रतापूर्वक, संशयरित होकर, विनीत भाव, खुले दिल, प्रेम एवं स्वेच्छा से अपने गुरु की सेवा कीजिए। गुरु-सेवा में आप जितनी अधिक ऊर्जा लगाएँगे, आपके अन्दर उसी अनुपात में दिव्य ऊर्जा का संचार होगा। गुरु की सेवा करने वाला समस्त विश्व की सेवा करता है। नि:स्वार्थभाव से गुरु की सेवा कीजिए। गुरु की सेवा करते समय अपने आन्तरिक प्रयोजनों का परीक्षण कीजिए। प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, सत्ता एवं सम्पत्ति की अपेक्षा किए बिना गुरु की सेवा होनी चाहिए।

आज्ञा पालन

गुरु-आज्ञा का पालन करना गुरु-भिक्त से बढ़कर है। यह एक अति मूल्यवान् गुण है। यदि आप इस गुण को विकसित करने का प्रयास करते हैं तो आत्म-साक्षात्कार के मार्ग का प्रधान शत्रु, अहंकार धीरे-धीरे समूल नष्ट हो जाता है।

गुरु-आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य ही अपनी निम्न प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर सकता है। आज्ञापालन में किसी प्रकार के प्रश्न या विलम्ब का स्थान नहीं होना चाहिए। एक ढोंगी शिष्य भय से गुरु की आज्ञा का पालन करता है, जबिक एक सच्चा शिष्य शुद्ध प्रेम से प्रेरित होकर उनकी आज्ञा का पालन करता है। आज्ञापालन की विधि सीखिए, तभी आप योग्य शिष्य बन सकेंगे।

इस भ्रमपूर्ण विचार का त्याग कीजिए कि गुरु की आज्ञा का पालन, उनके निर्देशों का कार्यान्वयन तथा उनके प्रति समर्पण एक दास्य-मानसिकता है। अज्ञानी मनुष्य ही ऐसा सोचता है कि दूसरे व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना उसकी प्रतिष्ठा एवं स्वतंत्रता के विरुद्ध है। यह एक गम्भीर भूल है। यदि आप सावधानी से विचार करेंगे तो पाएँगे कि जिसे आप अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कहते हैं, वह वस्तुत: अपने अहंकार एवं दम्भ के प्रति आपकी दयनीय दासता है। यह वासनात्मक मन की तरंग है। अपने मन एवं अहंकार पर विजय प्राप्त करने वाला ही वास्तव में स्वतंत्र है। वही नायक है। इस विजय की प्राप्ति के लिए ही शिष्य स्वयं को गुरु के उच्चतर आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति समर्पित करता है। इस समर्पण के द्वारा वह अपने निम्न अहंकार को परास्त करके अनन्त चेतना के परमानन्द को प्राप्त करता है।

लापरवाह शिष्य

आध्यात्मिक जीवन एम.ए. की डिग्री के लिए शोध-निबन्ध लिखने जैसा कार्य नहीं है। यह पूर्णतया भिन्न प्रकार का मार्ग है। यहाँ प्रत्येक कदम पर एक मार्गदर्शक की सहायता की आवश्यकता होती है। आज के युवा साधक उद्दण्ड, अभिमानी और स्वाग्रही होते हैं। वे गुरु-आज्ञा का पालन करना नहीं चाहते और न ही किसी सन्त को अपना गुरु बनाना चाहते हैं। वे प्रारम्भ से ही पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं। वे सोचते हैं कि वे तुरीया अवस्था में स्थित हैं, जबिक वे अध्यात्म का क-ख-ग भी नहीं जानते। वे 'अपनी डफली अपना राग' जैसी स्वच्छन्दता को सच्ची स्वतंत्रता मानने की भूल करते हैं। यही कारण है कि उनकी प्रगित नहीं होती और वे साधना के महत्त्व एवं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास खो बैठते हैं। वे निरुद्देश्य एवं लापरवाह होकर कश्मीर से गंगोत्री और गंगोत्री से रामेश्वरम् तक घूमते रहते हैं। यात्रा के क्रम में वे 'अपरोक्षानुभूति' या 'पंचदशी' जैसे ग्रंथों के कुछ उद्धरणों की निरर्थक व्याख्या करते तथा स्वयं को एक जीवनम्क्त के रूप में प्रस्तृत करते हैं।

समर्पण और कृपा

यदि आप नल से जल पीना चाहते हैं, तो आपको झुकना होगा। इसी प्रकार यदि आप गुरु के पवित्र ओठों से प्रवाहित होने वाले आध्यात्मिक अमरत्व के अमृत का पान करना चाहते हैं तो आपको विनम्रता की प्रतिमूर्ति बनना होगा।

मन की निम्न प्रकृति को पूर्णत: रूपान्तरित करना ही होगा। शिष्य अपने गुरु से कहता है—'मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ। मैं निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं आपके चरणों में रहना चाहता हूँ। मैंने स्वयं को आपके प्रति समर्पित कर दिया है।' किन्तु वास्तव में वह अपनी निम्न प्रकृति, आदतों, पुराने चरित्र, व्यवहार एवं क्रिया-कलापों को बदलना नहीं चाहता। शिष्य को अपने अहंकार, पूर्वकल्पित धारणाओं, पूर्वाग्रहों तथा स्वार्थपूर्ण अभिरुचियों का परित्याग करना होगा। ये सभी गुरु की शिक्षा ग्रहण करने एवं उनके निर्देशों के पालन में बाधक होते हैं।

अति विनम्र एवं अटूट विश्वास से युक्त शिष्य के जीवन में ही गुरु-कृपा अवतरित होती है। विश्वास का तात्पर्य गुरु में आस्था रखने, उन पर भरोसा करने से है। गुरु की वाणी को दृढ़ आस्था के साथ सत्य मान लेना विश्वास है। इस सम्बन्ध में शिष्य किसी प्रमाण या साक्ष्य की अपेक्षा नहीं करता। गुरु में विश्वास करने वाला शिष्य उनके आदेश-निर्देश पर सोच-विचार, तर्क-वितर्क, चिन्तन-मनन नहीं करता। वह यथाशक्ति, निष्ठापूर्वक केवल आज्ञापालन करता है।

किसी साधक में गुरु-कृपा उसकी साधना के माध्यम से कार्य करती है। यदि वह अपने साधनात्मक मार्ग पर अटल रहता है तो यह गुरु-कृपा है। जब वह प्रलोभनों के हमले का दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध करता है, तब यह भी गुरु-कृपा है। यदि लोग सादर, प्रेमपूर्वक उसका स्वागत करते हैं तो यह गुरु-कृपा है। यदि उसकी समस्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है, तो ऐसा गुरु-कृपा से ही हो रहा है। जब वह अवसाद एवं निराशा की स्थिति में भी शिक्त एवं प्रोत्साहन प्राप्त करता है, तब यह गुरु-कृपा है। जब वह शारीरिक चेतना के परे जाकर अपने आनन्द-स्वरूप में स्थित होता है तब यह भी गुरु-कृपा ही है। अपने जीवन के प्रत्येक कदम पर गुरु की कृपा का अनुभव कीजिए तथा उनके प्रति निष्कपट एवं सत्यिनिष्ठ बने रहिए।

चार प्रकार के शिष्य

सर्वोत्तम शिष्य पेट्रोल अथवा वायुयान-ईंधन के समान होता है। बहुत दूर रहते हुए भी वह गुरु-उपदेश की शिक्त के प्रित तत्काल ग्रहणशील हो जाएगा। दूसरे प्रकार का शिष्य कर्पूर के समान होता है। स्पर्श मात्र से उसकी अन्तरात्मा जागती तथा उसके अन्दर आध्यात्मिक अग्नि प्रज्विलत होती है। तीसरे प्रकार का शिष्य कोयले के समान होता है। उसकी आत्मा को जगाने के लिए गुरु को बहुत प्रयास करना पड़ता है। चौथे प्रकार का शिष्य केले के स्तम्भ जैसा होता है। उस पर किसी भी प्रयास का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गुरु कुछ भी क्यों न करें, वह शीतल तथा निष्क्रिय बना रहता है।

एक सुन्दर, परिष्कृत मूर्ति तैयार करने के लिए दो चीजें आवश्यक हैं—उत्तम संगमरमर का एक सुन्दर शिलाखण्ड तथा एक प्रवीण मूर्तिकार। संगमरमर के खण्ड को मूर्तिकार के हाथों में बिना शर्त रहना होगा, ताकि वह अपनी छेनी से अनावश्यक अंश काट-छाँट कर उसे एक मनोहर मूर्ति का रूप दे सके। इसी प्रकार शिष्य को साफ, शुद्ध एवं पूर्णत: निर्दोष संगमरमर के समान बनकर गुरु के मार्गदर्शन हेतु अपने को प्रस्तुत करना होगा, ताकि वे उसे अपनी आध्यात्मिक छेनी से काट-छाँट कर दिव्य रूप प्रदान कर सकें।

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट। भीतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट॥

Divinity on Earth

Swami Satyananda Saraswati



Guru is a human being. In the human body he may have an effulgent spirit or he may be ignorant, but the disciple considers his guru as a replica of divinity, and I think this is correct, but it is necessary to make certain amendments.

My guru was Swami Sivananda. I always regarded him as divinity and I still do, but I do not preach that he is God. That is the major amendment I want to make. The mistake here is that we consider our guru as God and we ask others to do likewise. My relationship with my guru is purely personal. Whether I regard him as divinity or as a monster: that is my personal opinion. Your guru is divine for you, I do not deny this truth, but if you want me to respect your guru as divine, I do not agree. That is where the confusions have come.

Divinity is inherent in every being. Some have awakened it and others have not. During my travels in search of a guru I met many souls, but I was searching for a guru in whom I could realize divinity. Of course, I knew that every guru is divine, but I could not see it.

The first saintly person whom I came across was Anandamayi Ma, a very-venerated guru. I saw her when I was only ten, but at that time I could not see divinity in her. I do not say that she was not divine. She was and she is, but I could not see it. After her, I met many great men – Ramana Maharshi, Sri Aurobindo, Swami Ramdas, Meher Baba – but I did not see God in any of them. They were godly, but I could not see it due to my early education in a Christian convent. I had read the Bible and the library of Christian saints, so I had all those things in my mind.

I also lived with an old tantric guru for six months. He was a very simple man, but a master of his science, and he loved me very much. I was nineteen then and he was sixty-seven. He wanted to teach me everything he knew, but I thought to



myself, 'I don't see God in him. For me, he is a learned man, a good man, but I don't see anything more in him.' So I left him.

However, on the very day I met Swami Sivananda, I started having experiences of lofty consciousness. I found in him the divinity personified, and as long as I lived with him I saw something behind his physical form. Whenever people asked me, "Do you consider your guru as God?" I would reply, "This is my personal matter, just as a man's attitude towards his wife is a personal matter. So please don't ask me this." This is the fundamental thing that one must remember in relation to guru.

You must realize the divinity in your guru. If you are not able to do this, then he is not your guru. If there is petrol in a can and you touch fire to it, what will happen? Everybody knows. It is the same with the relationship between guru and disciple. The moment the guru touches the spirit of the disciple, there is an explosion. If there is no explosion, then there is something wrong. Maybe someone told you this is petrol, but it is really water. So when you bring fire, nothing happens because there is no petrol. The relationship is not complete because fire cannot ignite water.

In the same way, when you realize divinity in your guru, there is the revelation. This is not intellectual; it is spiritual. You begin to hear sounds, see visions, do automatic movements. Such a man is your guru and such a man should be the replica of divinity to you.

What is divinity? It is higher existence, the totality of creation, an expression of God. God is divine. Now, guru is the incarnation of divinity. Divinity is without name and form. It has no dimension in which to exist; it is total. But man cannot comprehend its formlessness, so the subtle and transcendental divinity incarnates out of its own goodwill and descends in a gross form so that man may understand it. These incarnations are known as avataras or prophets, and to the disciples they are known as guru or God.

शिष्य को निर्देश

रवाभी सत्यानन्द सरस्वती

मन से थोड़ा परे एक अवस्था या अनुभव होता है, जिसमें तुम उस व्यक्ति या वस्तु का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हो, जिससे तुम्हें अत्यधिक प्रेम हो। तब तुम उसे सजगता के आन्तरिक स्तर पर उतनी ही स्पष्टता से मूर्त रूप दे सकते हो, जितना स्पष्ट वास्तविक रूप होता है। लेकिन ऐसा तुम तभी कर सकते हो जब तुम्हारी चेतना विकसित हो जाए। इस अवस्था में कल्पना की वस्तुएँ बड़ी स्पष्ट होती हैं। तुम आँखें बन्द कर अपने गुरु को इतने स्पष्ट रूप से देख सकते हो, उनसे बातचीत कर सकते हो, मानो वे तुम्हारे समक्ष बैठे हों। इसलिए प्रतिदिन नियमित रूप से एक-आध घण्टा साधना कर अपनी चेतना को अवश्य विकसित करना चाहिए।

चेतना की दो अवस्थाएँ होती हैं; एक अवस्था में तुम यह जानते हो कि तुम सब चीजों के द्रष्टा हो, जबिक दूसरी अवस्था में तुम्हें यह ज्ञान नहीं रहता। बाद में जब तुम उस अवस्था से बाहर आते हो तो थोड़ा असन्तुलन आता है, पर यिद तुम गुरु के निर्देशन में रहते हो, तो यह स्थिति जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत यिद गुरु का मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं है और असन्तुलन की स्थिति अधिक समय तक बनी रहे, तो पागल होने की भी संभावना रहती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि कोई भी साधना गुरु के आदेश के बिना न करें। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण साधक



के लिए प्राथमिक अनिवार्यता है। इसके बाद ही उचित अवसर आने पर गुरु उसे साधना बताएँगे।

यदि गुरु से तुम्हारा सम्बन्ध सहज है, तो इसका स्वरूप कुछ भी हो सकता है। तब तो वे तुम्हारे गुरु ही नहीं रह जाते, बिल्क माता, पिता, प्रेमी, सखा, यहाँ तक ि तुम्हारे बच्चे के समान भी हो सकते हैं। हो सकता है कि गुरु पुरुष हों और तुम महिला, परन्तु गुरु का हर शिष्य के साथ सम्बन्ध बड़ा स्पष्ट होता है। गुरु शिष्य के प्रति जो कुछ भी करते हैं, उसका उद्देश्य शिष्य की चेतना को प्रभावित करना होता है। इसके अतिरिक्त गुरु का शिष्य बनाने का कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता। पर अनेक शिष्य इस सत्य को नहीं समझ पाते, जिसके परिणामस्वरूप उनमें असन्तुलन आ जाता है। कभी तो वे सोचने लगते हैं कि गुरुदेव मुझे बहुत चाहते हैं और कभी सोचने लगते हैं कि गुरुदेव मेरे प्रति बड़ी उपेक्षा बरतते हैं। परन्तु ये दोनों ही विचार गलत हैं। गुरु न तो किसी से व्यक्तिगत रूप से जुड़े रहते हैं और न ही किसी शिष्य से प्यार अथवा नफरत करते हैं। वे जो कुछ करते हैं, उसका उद्देश्य शिष्य के मन को उन्नत बनाना होता है।

तुम देखते हो कि दूध में शक्कर मिलाने से उसका गुण बदल जाता है। उबलते पानी में चाय-पत्ती डाल दी जाए तो पानी का गुण बदल जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि गुरु तुम्हारे मन में समा जाएँ तो मन के गुण और ढाँचे में बड़ा परिवर्तन आ जाएगा। यह प्रक्रिया बड़ी सरल है। गुरु इस परिवर्तन को लाने की हजारों युक्तियाँ जानते हैं। वे तुम्हें मंत्र, साधना, प्रवचन, कीर्तन, चिन्तन या अन्य किसी भी तरीके से बदल सकते हैं। साधना केवल तभी प्रारम्भ होती है जब तुम्हारे मन में गुरु बसने लगते हैं।

साधक शिष्य के जीवन में एक पल ऐसा आना चाहिए जब वह अपनी चेतना को विकसित करने में सक्षम हो। इसके बाद उसे भौतिक रूप से गुरु की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। तब तो गुरु हमेशा उसके पास ही रहेंगे। यह अवस्था गुरु के भौतिक सान्निध्य की अपेक्षा कहीं बेहतर होती है। अगर तुम अपने एकांत के क्षणों में आँखें बन्द कर गुरु के स्वरूप का अन्तर्दर्शन कर सको, तो गुरु की भौतिक निकटता की अपेक्षा कहीं अधिक संतुष्टि का अनुभव कर सकोगे।

सबसे पहले तो यह जानो और मानो कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ, और प्रतिपल तुम मेरे नियंत्रण में हो। यही गुरु का वास्तविक अर्थ भी होता है। हो सकता है कभी-कभी मैं तुमसे नाराज हो जाऊँ और धक्के मारकर आश्रम से बाहर निकाल दूँ। तुम्हें सभी बातें स्वीकारनी होंगी। सच्चा शिष्य वही होता है, जो हर समय गुरु के नियंत्रण में रहता है।

ऐसे अनेक लोग मिलेंगे जो आध्यात्मिक साधना में बड़ा श्रम करते हैं। उन्हें कुछ अच्छे अनुभव भी होते हैं। परन्तु कुछ समय बाद वे जैसे के तैसे हो जाते हैं, क्योंिक उनके गुरु नहीं होते। वे मनमानी करते हैं और बहुधा निरर्थक बातों में अपना समय बरबाद कर देते हैं। अगर मैं तुम्हें जगे रहने, शांत रहने या बहस न करने का

आदेश दूँ, तो बिना किसी झिझक या उचित-अनुचित का विचार किये तुम्हें उसका पालन करना चाहिए। गुरु के समक्ष शिष्य का अपना कोई व्यक्तित्व न रहे, तभी वे उसकी कुछ सहायता कर सकते हैं।

कठिन परिश्रम करो और जो बातें मैंने तुमसे कही हैं, उनका पालन करो। अपनी अन्तश्चेतना को भी विकसित करो और गुरु से हमेशा डोर जोड़े रखो, भले ही बाह्य रूप से तुम गुरु से कितनी ही दूर या अलग क्यों न दिखलाई पड़ो। इसके लिए निरंतर अभ्यास करना होगा। प्रारम्भ में यह बड़ा अटपटा लगेगा, लेकिन जैसे-जैसे तुम्हारी चेतना विकास के सोपान पार करेगी, तुम्हें यह ठोस यथार्थ लगेगा।

इस चेतना का अनुभव तुम्हें अत्यधिक भय, वासना आदि के क्षणों में होता है। इसका अभ्यास करो, पर एक बात हमेशा याद रखो कि मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, वह अंतिम है और उसमें तर्क की कोई गुंजाइश नहीं है। अगर समर्पण की इस मन:स्थिति को बनाने के पूर्व ही तुम यह अभ्यास करोगे तो उच्च चेतना की क्षणिक अभिव्यक्ति के अवसरों पर उसे संभालना तुम्हारे लिए बड़ा कठिन होगा। तुम कहोगे, 'मैं ऑस्ट्रेलिया जा रहा हूँ,' और अगर मैं कहूँ, 'नहीं, मत जाओ' तो तुम उस पर ध्यान ही नहीं दोगे।

इसलिए गुरु के साथ तुम्हारा सम्बन्ध कुछ ऐसा हो कि वे जो कुछ कहें, तुम उसे अंतिम मानो। इसमें किन्तु-परन्तु, क्यों-कैसे मत जोड़ो। मेरा 'नहीं' तुम्हारे लिए अंतिम 'नहीं' होना चाहिए। अन्यथा उच्च चेतना की अभिव्यक्ति के समय बड़े उपद्रव उठ खड़े होंगे और तुम कहीं के नहीं रहोगे। गुरु का आदेश शिष्य के लिए ईश्वरादेश होना चाहिए। जब तक गुरु के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, उच्च साधना का प्रयास नहीं करना चाहिए। नहीं तो साधक भटक सकता है।

सामान्य जीवन में मेरे और तुम्हारे अनुभव भिन्न हो सकते हैं, लेकिन गुरु और शिष्य के सम्बन्धों का स्वरूप आध्यात्मिक होता है। तुम जिस भी पेशे में हो, जहाँ भी हो, जो भी करते हो, इस चेतना को हमेशा बनाये रखो। हो सकता है, मेरे कहे अनुसार करने से तुम कुछ छोटी-मोटी गलतियाँ कर बैठो। मान लो, तुम रसोई में काम करते हो और मैं तुमसे गेहूँ बाहर निकालने के लिए कहता हूँ। संभव है बारिश आ जाए और गेहूँ के दस बोरे खराब हो जाएँ। यह तो भौतिक नुकसान हुआ, लेकिन चूँकि तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया है, तुम्हें इसका आध्यात्मिक लाभ अवश्य मिलेगा।

याद रखो, गुरु कभी शिष्य का शोषण नहीं करते। अनेक पुस्तकों में यह लिखा मिलता है कि गुरु शिष्यों का शोषण करते हैं, परन्तु मेरा यह अनुभव है कि वे अपने नि:स्वार्थ शिष्यों का कभी शोषण नहीं करते। जो शिष्य स्वार्थी नहीं होते, वे कभी घाटे में नहीं रहते, भले ही गुरु उनसे कुछ भी माँग लें, क्योंकि ऐसे शिष्यों की चेतना उच्च से उच्चतर विकास की ओर गतिशील रहती है। ■

Faith: Shakti of the Spirit

Swami Niranjanananda Saraswati



The message of Guru Poornima is the attempt to make a connection with the *guru tattwa*, with one's higher nature, by trying to understand the role of spirituality, the guru connection, sannyasa and yoga in one's life.

Some people are experimenting with yoga, asana and pranayama, and they are connected to the ashram because of yoga. Some people are connected as they are part of the mission and the vision of Sri Swamiji, and they are making his vision come true through their own effort, contribution and participation.

No matter who you are, your spiritual identity is defined by the volume of your faith. In yoga and the spiritual traditions faith is considered to be the *shakti*, the power, the strength, of *atma*, the spirit, as it is faith that keeps you positive. It is faith that keeps you optimistic. It is faith that keeps you hopeful. It is faith that keeps you happy, it is faith that keeps you going when the going becomes difficult. While the mind is screaming at you, "What are you doing to yourself?" your faith tells you to keep on going. When the mind is screaming at you, "What the hell are you doing with yourself!" your faith says, "Keep

on going, keep on going, keep on going. Believe, trust and just march. Let go!" This indicates that though the mind can play tricks, faith gives you the strength to go on. Faith is the shakti of atma.

Willpower is the shakti of mind; faith is the shakti of spirit. In spiritual life you connect with faith, just as in material life you connect with the world through the mind, through your perceptions, through your karmendriyas and jnanendriyas. Just as you connect with the world with all the senses and instruments available at your disposal in this body and mind, you connect with the spiritual world with the rope, with the strength and the impulse of a shakti called 'faith'. That faith has to be protected, preserved and cherished, as it is most precious; it indicates the goodness in each one. It indicates the auspicious, the good and the pious intention of each one. It indicates the positive connection that each one has with the guru or with the divine.

Overcoming the mind with faith

Faith must be protected from the mischief of the mind. The mind always plays mischief, as its expression is influenced by the *shadvikara*, the six colours of the mind. These six are *kama*, passion, desire, likes; *krodha*, determination, aggressive nature, motivation, the drive to win; *lobha*, greed, desire to want and demand more; *moha*, infatuation, the feeling of belonging, 'This belongs to me, I belong to that'; *mada*, arrogance of position, post, power; and *matsarya*, jealousy and envy, the feeling of 'That person has more than me, I have less than that person', the competitive feeling that motivates you to become something in life.

The shadvikaras are the six colours of the mind, and when the mind is coloured by a particular colour you perceive the entire world, including yourself, in that colour. Yoga teaches you a way to transcend the mind, to still the agitations of the mind, yet it is faith that connects you with your spiritual nature. Therefore the message of Guru Poornima is to maintain your faith, as it is faith that will uplift you. The mind will always pull you down into the depths of suffering and hell. This is not only written in the books; this is the experience of each and every human being who has taken birth on this planet.

The mind will always drag you to the depths of suffering and hell, while faith will always elevate you to dimensions higher than heaven. This is the entire teaching of spiritual life. If you see the lives of saints, the gurus, the masters through all the ages, through all the traditions, from time immemorial till now, what have they taught you? To hold on to the ray of hope in the dark room of suffering, confusion and anxiety; hold on to that ray of hope and remain convinced that you have the strength to overcome all difficulties in life, and that you cannot be subjugated by any conflict or difficulty.

This is the strength that guru gives you. This is the strength that God gives you. However, you have to understand it and realize it. You have to maintain and cherish the tool through which you can appreciate this learning in life.

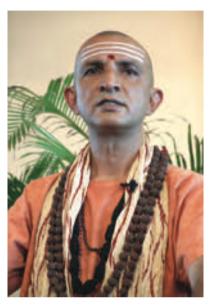
Surrender

The one who can maintain the purity of their faith is the shishya, the surrendered disciple. *Shishya* means the surrendered disciple. The surrendered disciple sees what guru sees, the surrendered disciple hears what guru hears, smells what guru smells, speaks what guru speaks; the surrendered disciple lives how guru has lived. The surrendered disciple follows the principles that the guru has followed as the guru and disciple have become one.

When there is surrender, total and complete, then there is no barrier; both shaktis become one. When you bring the mental component into the relationship between the guru and yourself, then naturally that relationship will be coloured by one of the vikaras, and you will see yourself in the same colour as well. Therefore, it is the maintenance and the cultivation of faith that you need to focus in your life, to find *shanti*, *sukha* and *prasannata*: peace, bliss and contentment.

संन्यास-मार्ग में गुरु का मार्गदर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



जीवन में दो मार्ग हैं, प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति-मार्गी संसार में संलग्न रहते हैं, इसलिए उनके लिए जीवन को अनुशासन में लाना, व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। इसके लिए संयम, अनुशासन और साधना—ये उपाय बताए गए हैं। कुछ लोग संसार से अलग होकर आत्मान्वेषण करना चाहते हैं और अपने आप को आध्यात्मिकता में स्थापित करना चाहते हैं। वे हो जाते हैं संन्यासी जो निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करते हैं। प्रवृत्ति-पथ पर व्यक्ति गुरु का अनुसरण करे या न करे, लेकिन निवृत्ति-पथ की यात्रा शुरू होती है गुरु के साथ। जब तक वह मार्गदर्शक

मिलता नहीं, हम अपने आप को प्रवृत्ति-मार्गे से मुक्त नहीं कर पाते हैं। इच्छा भले ही हो जाए कि 'भई, बहुत झंझटों को झेल लिया हूँ, अब थोड़ी आंतरिक शांति चाहिए,' लेकिन मार्ग नहीं मालूम पड़ेगा। मार्ग बतलाने के लिए मार्गदर्शक की, गुरु की आवश्यकता होती है।

संन्यासी का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से हैं जिसने अपने आप को गुरु की शिक्षाओं के प्रिति समर्पित कर दिया है और उनकी शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन के व्यवहारों को ढालने का प्रयास कर रहा है। वास्तव में देखा जाए तो संन्यासी का यही मतलब होता है। संन्यास को हम लोग परम्परा मानते हैं और यह है भी। संन्यास को जीवन की एक अवस्था मानते हैं और यह है भी। लेकिन जो भावना एक शिष्य के जीवन में संन्यास-दीक्षा के समय उत्पन्न होती है, वह यही होती है कि मैं अपने आप को गुरु के प्रति समर्पित करता हूँ, मैं अब गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् करने के लिए तत्पर हूँ। जब हम गुरु के प्रति समर्पित रहते हुए, गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् करते हुए उस मार्ग पर चलते हैं, तब गुरु हमें अपने जीवन में त्याग एवं समर्पण को अपनाने तथा विश्वास को धारण करने में सहायता देते हैं। यहीं पर गुरु और शिष्य के बीच एक अंतरंग सम्बन्ध की स्थापना होती है।

अनावश्यक चीजों का त्याग

निवृत्ति-मार्ग का पहला आधार है त्याग। घर-परिवार का त्याग सरल है और संन्यासी को करना भी चाहिए। अगर संन्यासी कहे कि मैं घर-परिवार का त्याग नहीं करूँगा तो फिर वह संन्यासी कैसा? परम्परा में निर्देश दिया गया है कि संन्यासी को अपने घर-परिवार के सम्बन्धों से मुक्त होना है। यहाँ पर त्याग का मतलब छोड़ना नहीं, बिल्क सम्बन्धों से अपने आप को मुक्त करना है।

हर परिवार में अपेक्षाएँ होती हैं और इन अपेक्षाओं के साथ दबाव भी होता है। व्यक्ति को प्रभावित किया जाता है कि तुम्हें ऐसा करना चाहिए। जो व्यक्ति संन्यास मार्ग में प्रवेश कर अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ना चाहता है, उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह इन सम्बन्धों से अपने आप को मुक्त करे। इन सम्बन्धों से वह मुक्त कैसे होगा? जब तक साथ रहोगे सम्बन्ध तो बनेगा ही। इसलिए साथ रहना ही छोड़ दो। साथ नहीं रहोगे तो सम्बन्ध नहीं बनेगा, सम्बन्ध नहीं बनेगा तो अपेक्षा नहीं होगी, अपेक्षा नहीं होगी तो दबाव नहीं होगा और जब दबाव नहीं तब तुम मुक्त हो। इसीलिए संन्यास परम्परा में कहा गया है कि जो व्यक्ति संन्यास मार्ग में आगे बढ़ना चाहता है, उसे अपने घर-परिवार से सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा।

पर यह सम्बन्ध-विच्छेद भी एक भौतिक प्रक्रिया ही है। मुझे याद है बचपन में स्वामीजी एक सूत्र कहा करते थे। बहुत बार मैं उनसे कहता था, 'स्वामीजी, हम शहर में क्यों हैं? साधु लोग तो जंगलों-पर्वतों में रहते हैं। हम लोगों को भी वहीं पर आश्रम बना कर एकांत में रहना चाहिए।' उस समय स्वामीजी समझाते हुए कहते थे, 'देखो, रहने को तो तुम कहीं भी रह सकते हो, चाहे शहर में या जंगल में। लेकिन इस बात को जान लेना कि शहर में शोर-गुल नहीं होता और जंगलों में, हिमालय की कंदराओं में शांति नहीं होती। यह सब अपने मन का ही खेल है। अगर तुम अपने मन को नियंत्रण में रख सकते हो तो बीच बाजार में भी तुमको उतनी ही शांति मिलेगी जितनी हिमालय में तुम खोजते हो। और अगर अपने मन को वश में नहीं रख सकते तो हिमालय की गुफाओं में बैठकर भी तुम अशांत रहोगे।'

पहले तो यह बात समझ में नहीं आती थी, लेकिन अब इस बात को समझ पाते हैं क्योंकि वास्तव में यह सब मन के सम्बन्धों का ही खेल है, चाहे वह सम्बन्ध घर-परिवार से हो या इन्द्रियों से या इन्द्रियों के विषयों से। यहीं पर गुरु त्याग की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि जो तुम्हारे लिए अनुपयोगी है, उसे छोड़ते जाओ। वासनाओं को छोड़ो, वासनाओं के प्रति सजग बनकर उनसे अपने आपको मुक्त करो। विषयों के साथ अपने सम्बन्ध तोड़ो। लेकिन छोड़ने के पहले, जो उपयोगी है उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास भी करते जाओ। केवल छोड़ने का ख्याल मत करो, बिल्क पाने का भी ख्याल करो, पाने के लिए भी प्रयास करो। जैसे-जैसे तुम पाते जाओगे, वैसे-वैसे जो छूटने योग्य चीजें हैं, वे छूटती जाएँगी।

क्या तुम अनावश्यक चीजों को सचमुच छोड़ सकते हो? बहुत कठिन है। मुझे आज तक कोई नहीं मिला जो यह कर सके। लोग हमेशा अपनी कामनाओं, वासनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और स्मृतियों की गठरी ढोते रहते हैं। जीवन की अच्छी-बुरी स्मृतियाँ मृत्यु-पर्यन्त बनी रहती हैं। तुम अपने मन से यह अनावश्यक सामग्री नहीं निकाल पाते।

गुरु का सान्निध्य ही तुम्हें यह सब अनावश्यक सामग्री छोड़ना सिखाता है। कैसे? उसे स्वीकार करके। गुरु से तुम्हें यह शिक्षा मिलती है कि अपने जीवन की अनावश्यक सामग्री का अस्तित्व स्वीकार करो और उसकी निरर्थकता को अच्छी तरह जान लो। जब तुम्हें कोई मूल्यवान् चीज मिलती है तो मूल्यहीन चीज अपने आप छूट जाती है। यही त्याग है—पहले मूल्यवान् चीज की प्राप्ति और फिर मूल्यहीन चीज की तिलांजलि। त्याग का वास्तविक अर्थ है अपने आप को उचित, उपयुक्त, सकारात्मक एवं उत्तम चीजों से युक्त करना और नकारात्मक एवं हानिकारक चीजों से मुक्त करना। गुरु तुम्हारी किमयों की ओर इशारा कर तुम्हें त्याग का मार्ग दिखाता है। कालान्तर में तुम स्वयं अपने जीवन में त्याग का अनुभव करने लगते हो। श्री स्वामीजी के प्रशिक्षण से मैंने यही समझा और जाना है।

तुम्हारे पास सब कुछ हो सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि तुम उसका उपभोग करो या उससे आसक्त हो जाओ। त्याग का यही सिद्धान्त है—'मुझे अमुक चीज की न जरूरत है और न ही कोई चाह। वह वहाँ पड़ी है, ठीक है। समय आने पर उसका सदुपयोग होगा।' यह एक ऐसी अवस्था का उदाहरण है जहाँ भौतिक स्तर पर तुम्हारे पास सब कुछ है, लेकिन तुम्हारी भावना त्याग की है। तुम किसी चीज को अस्वीकार नहीं करते, बल्कि सब कुछ स्वीकार करते हो। धीरे-धीरे तुम जीवन के अन्य सूक्ष्म स्तरों पर भी आध्यात्मिक रत्न प्राप्त करते जाते हो और अनावश्यक कंकड़-पत्थर छटते जाते हैं।

इस तरह त्याग केवल छोड़ने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि प्राप्त करने और उसके पश्चात् छूटने की प्रक्रिया है। त्याग तभी सफल होता है जब पहले तुम पाओगे और उसके बाद छोड़ोगे। त्याग शब्द से लोग नाहक भयभीत हो जाते हैं कि सब कुछ छोड़ना पड़ेगा। जब तुम सीढ़ी पर चढ़ते हो तो पहले एक पैर ऊपर के पाये को प्राप्त करता है और वहाँ पर अपने आप को स्थिर करता है। जब वह पैर स्थिर हो जाता है, तब नीचे वाला पैर निचले पाये को छोड़कर आगे बढ़ता है। पहले है प्राप्ति, फिर है त्याग।

उसी प्रकार से जब मन स्वस्थ हो जाता है तब मानसिक अस्वस्थता अपने आप छूट जाती है। जब भावना स्वस्थ होती है तब भावनात्मक अस्वस्थता पीछे छूट जाती है। इसलिए त्याग की जो परिभाषा है, वह छोड़ने की परिभाषा नहीं है। त्याग की परिभाषा यह है कि एक चीज को पाओ और उसके बदले में दूसरी चीज को छोड़ो। यह प्रयास हर शिष्य के जीवन में सतत् होते रहना चाहिए।

समर्पण

निवृत्ति-मार्ग का दूसरा आधार है समर्पण। समर्पण दो शब्दों के योग से बना है, सम् एवं अर्पण। जब हम सभी क्षमताओं और प्रतिभाओं को अर्पित कर देते हैं तब वह समर्पण कहलाता है। तुम सब कुछ किसे अर्पित कर सकते हो? केवल ईश्वर या गुरु को। जहाँ तक ईश्वर का प्रश्न है, तुमने उन्हें कभी देखा नहीं, तुम उन्हें जानते नहीं। पर गुरु की उपस्थिति तो प्रत्यक्ष है। उनके साथ ठोस सम्बन्ध है। जब समर्पण का विचार आता है उस समय साधक का मन नहीं रहता। अगर मन रहता तो वह साधक से कहता, 'यह मत दो, वह भी मत दो।' लेकिन मन की अनुपस्थिति में हम अपना सर्वस्व दे सकते हैं। यह इस बात का संकेत है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध में मन के परे जाना होता है। मन की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का अतिक्रमण करना होता है।

तुम्हें मिलारेप्पा की कहानी मालूम होगी। मिलारेप्पा की जगह और कोई होता तो जरूर सोचता कि गुरुजी सिठया गये हैं। लेकिन मिलारेप्पा ऐसा शिष्य था जो अपने मन के परे चला गया था। उसने अपने गुरु के ऊट-पटाँग निर्देशों पर सवाल-जवाब नहीं किया। उसने अपने आप से इतना ही कहा, 'मेरे गुरु का यही आदेश है। वे मुझसे यही करवाना चाहते हैं। मैं यही करूँगा।' उसने गुरु-आज्ञा का बिना किसी हिचकिचाहट के अक्षरश: पालन किया। उसने एक बार भी यह नहीं सोचा, 'मेरे गुरु मुझे नाहक परेशान तो नहीं कर रहे? क्या वे मेरे व्यवहार, मेरी प्रतिक्रियाओं को देखने का प्रयास तो नहीं कर रहे?' मिलारेप्पा ने अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर दिया था। उसे पूरा विश्वास था, 'अगर मैंने अपने आप को पूरी तरह गुरुजी के हाथ सौंप दिया है तो

मेरा योगक्षेम अब उनकी जिम्मेदारी है। मुझे फिर किस बात की चिन्ता?'

जब समर्पण की बात होती है, उस समय चेले को अच्छी तरह से सोच-विचार कर लेना चाहिए कि वह कहाँ तक अपने आप को समर्पित कर सकता है। समर्पित होने का मतलब अपने आप को अंदर से खोखला कर देना। अर्जुन ने महाभारत युद्ध से पहले श्रीकृष्ण से बहुत प्रश्न किये। लेकिन श्रीकृष्ण ने उन प्रश्नों का तब तक कोई उत्तर नहीं दिया जब तक अर्जुन के मुख से यह वाक्य नहीं निकला— शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। तब



जाकर श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं। उसके पहले चुप ही रहते हैं, कुछ कहते नहीं। गुरु को मालूम रहता है कि शिष्य की आंतरिक पात्रता तभी बढ़ती है जब वह अपने आप को अर्पित करता है। जब तक शिष्य अकड़कर खड़ा है, और अपने विचारों को ही व्यक्त करते रहता है, तब तक उसकी आंतरिक पात्रता नहीं के बराबर रहती है। समर्पण का मतलब होता है श्रद्धा से युक्त होकर गुरु या ईश्वर तत्त्व के प्रति अपने आप को अर्पित कर देना। एक बार समर्पण हो जाए, तब फिर चमत्कार होने लगते हैं।

इस स्तर का समर्पण तभी आता है जब तुम अपने भीतर श्रद्धा और विश्वास जागृत कर पाते हो। नहीं तो समर्पण के मार्ग पर तुम कहीं-न-कहीं अवश्य रुक जाओगे। इसलिए समर्पण का सही मायने में यही मतलब होता है कि तुम अपने मन के परे पहुँकर अपने गुरु के साथ एक सहज, सरल और विनम्र सम्बन्ध विकसित करो। गुरु के रास्ते यह सम्बन्ध फिर ईश्वर तक पहुँचता है।

विश्वास

निवृत्ति-पथ का तीसरा आधार है विश्वास। यह विश्वास बौद्धिक समझ का नहीं बिल्क हृदय की गहन भावना का परिणाम है। विश्वास होता है गुरु पर और स्वयं पर। एक बार एक भक्त रामकृष्ण परमहंस के दर्शन के लिए कलकत्ता से दक्षिणेश्वर गया। बरसात के दिन थे। मूसलाधार बारिश के कारण नदी में बाढ़ आ गई थी। बाढ़ के कारण नदी पर नौका चलना बंद हो गया था। भक्त रामकृष्ण परमहंस के पास गंगा के दूसरे किनारे बैठा हुआ था। शाम हो रही थी। उसे घर वापस जाना था। वह ठाकुर से कहता है, 'घर कैसे जाऊँ? नदी में बाढ़ आई है। पानी चढ़ गया है, नौकाएँ तो चल नहीं रहीं। और मेरा घर पहुँचना आवश्यक है।'

ठाकुर कहते हैं, 'माँ पर विश्वास रखो। वह सब काम सुलभ कर देगी।' भक्त कहता है, 'माँ पर विश्वास तो है, लेकिन समझ में नहीं आ रहा कि मैं नदी कैसे पार करूँगा? माँ थोड़े ही आकर मुझे नदी पार ले जाएगी।' ठाकुर कहते हैं, 'कोई बात नहीं। मैं कागज़ पर एक मंत्र लिख देता हूँ। उस कागज़ को तुम अपनी जेब में रख लो, और माँ का स्मरण करते हुए नदी को पार कर जाओ।' इतना कहकर ठाकुर रामकृष्ण ने कागज़ के एक टुकड़े पर कोई मंत्र लिखा, उस कागज़ को मोड़कर उस आदमी की जेब में डाल दिया, और कहा कि अब तुम जाओ।

भक्त के मन में विश्वास था कि रामकृष्ण की शक्ति और उनके द्वारा दिया गया मंत्र उसे सुरक्षित नदी पार ले जाएगा। वह नदी के समीप आया और नदी में प्रवेश कर आगे बढ़ने लगा। उसने देखा कि डूबने के बजाय वह पानी के ऊपर चल रहा है! जब वह नदी के बीचोबीच पहुँचा, उसके मन में विचार आया, 'ठाकुर ने ऐसा कौन-सा शिक्तिशाली मंत्र लिखकर दिया है, एक बार देखूँ तो सही।' उसने अपनी जेब में हाथ डाला, कागज़ निकाला, कागज़ को खोला और पढ़ा 'काली माँ की जय।' उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही, 'काली माँ की जय! ठाकुर ने बस यही लिखा है!'

जैसे ही उसके मन में यह विचार आया, वह पानी के अंदर चला गया। जैसे ही उसके मन में शंका आयी, वह डूब गया। जब तक उसके भीतर अपने गुरु पर, अपने गुरु की शक्ति पर विश्वास था, कागज़ में कुछ भी लिखा रहे, यहाँ तक कि '2+2=4' भी लिखा रहे, उस विश्वास के साथ आदमी नदी को आसानी से पार कर सकता था। लेकिन जब उसने कागज़ खोलकर देखा कि उसमें 'काली माँ की जय' ही लिखा है, उसके मन में वह विश्वास खत्म हो गया। और विश्वास के खत्म होते ही वह पानी में डूब गया। विश्वास गुरु और स्वयं, दोनों पर होना चाहिए। गुरु में विश्वास कि वे मेरी नैया को उस पार लगाएँगे, और साथ ही स्वयं पर विश्वास कि मैं गुरु द्वारा कहे निर्देशों के अनुसार चल पाऊँगा।

इसी तरह रामचिरतमानस में माता शबरी का वृत्तान्त आता है। जब वे सोलह बरस की थीं, उनके गुरु ने उनसे कहा था, 'एक दिन प्रभु श्रीराम तुम्हारी कुटिया में अवश्य पधारेंगे।' उन्होंने आगमन का समय नहीं बताया पर उस दिन से माता शबरी हर दिन यही सोचतीं, 'आज वह शुभ दिन है जब प्रभु श्रीराम मेरी कुटिया को धन्य करेंगे।' हर दिन वे श्रीराम के स्वागत की तैयारी करतीं। अपनी कुटिया की सफाई करतीं, फल-फूल एकत्र करतीं और उनका आसन तैयार करतीं। वे अस्सी बरस की हो गईं, फिर भी यह सब रोज करती रहीं। तब जाकर श्री राम उनकी कुटिया में पधारे। चौंसठ वर्षों से वे प्रतिदिन उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। क्या तुम लोग ऐसा कर पाते? तीन दिन बाद ही तुम कह देते, 'जब प्रभु आयेंगे, तब देखी जाएगी। रोज-रोज तैयारी करने से क्या फायदा?' लेकिन माता शबरी को अपने गुरु पर पूरा विश्वास था। गुरु ने कहा था कि श्रीराम एक दिन तुम्हारे यहाँ आयेंगे और वे हर दिन उसी लगन और भावना के साथ प्रभु की राह देखती रहीं। इन उदाहरणों से हमें संकेत मिलता है कि हम अपने जीवन में किस प्रकार की मानसिकता विकसित कर सकते हैं, बशर्ते हमारी भावना में गहराई और तीव्रता हो।

त्याग, समर्पण और विश्वास—एक निवृत्ति-मार्गी के लिए ये तीनों आवश्यक हैं, जो उसे जीवन में आगे ले जा सकते हैं। जैसे-जैसे हम इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, हमारी कामनाएँ, वासनाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ कम होती जाती हैं। मन बन्धन-मुक्त होता जाता है और हम अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का पुन: अनुभव करने लगते हैं। फिर जो सम्बन्ध हम स्वयं, गुरु और ईश्वर के साथ स्थापित करते हैं, वह स्थायी एवं शाश्वत होता है। जिस प्रकार ईश्वर की ऊर्जा गुरु में जीवन्त और जागृत रहती है, उसी प्रकार शिष्य के जीवन मे भी गुरु की ऊर्जा जीवन्त और जागृत हो जाती है।

Role of Jupiter

God is a phenomenal administrator. In his regime, the sun and moon remain separated and vet revolving on a fixed axis, as per the laid-down norm. The rivers follow the rule of gravity and flow from top to bottom and not from bottom to top. And water evaporates into vapour and then comes back as rain. What will happen if it is not so? I presume you have read something about the universe, about the cosmic whirls. You have the earth here around which revolves our moon. After this there is Venus, then comes Mercury and finally the sun. All around the sun there are nine planets. There is Pluto, Uranus, Neptune, and others. In between are those rocks, big ones, almost as big as the earth. Some are even bigger than the earth. They keep on roaming in the space like rogues and loafers. They are called asteroids.

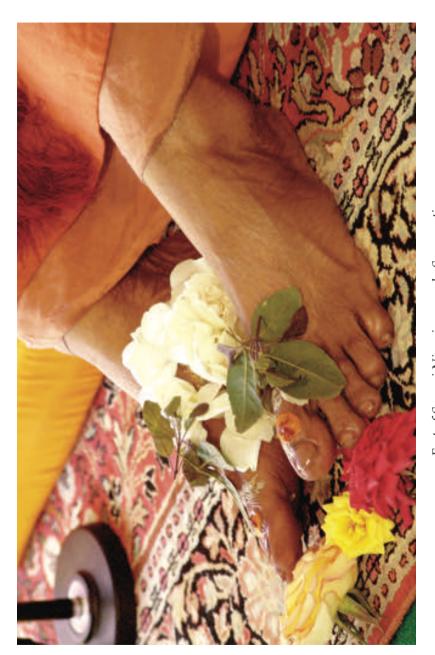
roam around loafers, but when they come near the earth they are pulled away by Jupiter and we are saved. That is God's maya. He has put Jupiter, the largest planet of our solar system, and also the guru planet, to save the inhabitants of earth. You see, Brihaspati, or Jupiter, was the guru of the devatas, the gods. He takes care of everyone. All the asteroids that come and pass through are sucked and pulled away by Brihaspati. If there was no Brihaspati, all the asteroids would have fallen here. That does not happen due to the cosmic laws.



Feet of Paramguru, Swami Sivananda Saraswati



Feet of Sri Swami Satyananda Saraswati



Feet of Swami Niranjanananda Saraswati



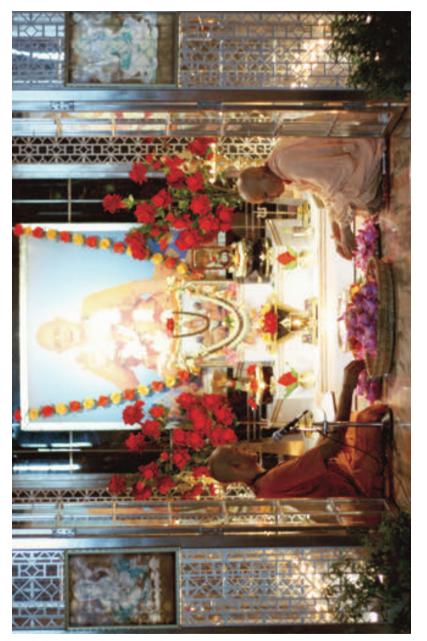




Guru Paduka Poojan, Rikhia



Guru Paduka Poojan, Munger



Gurupeeth Paduka Poojan, Munger

गुरु के प्रति आज्ञाकारिता

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आप किसी भी प्रकार के शिष्य क्यों न हों, गुरु के प्रति आपको विश्वास, भिक्त, समर्पण, अहंकारहीनता, नम्रता, निष्कपटता एवं पूर्ण आज्ञापालन का भाव विकसित करना ही होगा। शिष्यों को हमेशा यह समझना चाहिये कि उन्होंने गुरु का वरण उनकी सेवा करने के लिये किया है। गुरु को उनकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें अपने विकास के लिए गुरु की आवश्यकता है। अगर वे इस प्रकार का विचार रखेंगे तभी गुरु द्वारा दिये गए निर्देशों का पालन कर सकेंगे, चाहे वे निर्देश कितने भी व्यर्थ दिखें। यदि इसके विपरीत विचार रखेंगे तो उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अगर उनकी श्रद्धा और भिक्त नष्ट हुई, तो वे शिष्य होने का अर्थ पूछना प्रारम्भ कर देंगे और फिर यहीं से भ्रम पैदा होने लगेगा।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध तर्क या सीमित बुद्धि पर आधारित नहीं है। यह एक ऐसा सम्बन्ध है जो उच्चतर चेतना पर आधारित है। जिसकी यह चेतना समाप्त हो गई है उसे प्रत्येक कार्य व्यर्थ लगेगा। बुद्धि नकारात्मक सन्देहों से मन को ढक देगी। अस्थिर आस्था से युक्त शिष्य सोचेगा कि धन या पुरस्कार की प्राप्ति के बिना आश्रम में इतना कठिन काम करना व्यर्थ है। वह कल्पना करेगा कि इतना काम कहीं और किया जाए तो पर्याप्त धन-प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। उसके मन में इसी प्रकार के अनेक विचार आयेंगे। आश्रम आने के पूर्व जिस जीवन को उसने अनुपयोगी समझ कर त्याग दिया था, वह अब उतना बुरा नहीं, मोहक लगने लगेगा।

ऐसे विचार आ भी सकते हैं और नहीं भी आ सकते, लेकिन यह पूर्णत: शिष्य पर निर्भर रहता है कि वह इनका सामना किस प्रकार करता है। यदि शिष्य निरन्तर भिक्त एवं विश्वास बनाये रखने का प्रयास करेगा तो वह मन की अशांति को झेलने में सक्षम हो जाएगा, अन्यथा उसकी शिक्त बिखर जाएगी, संकल्पशिक्त कमजोर हो जाएगी। आश्रम में रहते हुए भी वह अपूर्णता की भावना से ग्रस्त रहेगा।

गुरु से सम्बन्ध मजबूत करने के लिये पूर्ण आज्ञापालन आवश्यक है। यह बात उन गृहस्थ शिष्यों के लिये भी समान रूप से लागू है जो आश्रम में निवास नहीं करते। एक बात हमेशा याद रखनी चाहिये—गुरु पागल या सनकी नहीं होते। वे हमारी सीमाओं को हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। यदि वे हमें कुछ करने की आज्ञा देते हैं तो हमें निश्चित रूप से यह समझना चाहिये कि उन्होंने पर्याप्त विचार करने के बाद ही ऐसा किया है। अगर वे कोई ऐसा कार्य करने के लिये हम पर जोर डाल रहे हैं जो हमें पसन्द नहीं है, तो इसका कारण यह है कि हमारे व्यक्तित्व में कुछ अवरोध हैं, जिन्हें हटाना हमारे आध्यात्मिक विकास के लिये आवश्यक है।

25



इसी कारण यह सलाह दी जाती है कि शिष्य को बच्चे के समान निष्कपट होना चाहिये। उसकी आवश्यकताएँ न्यूनतम, कार्य पवित्र एवं शब्द सुखद होने चाहिये। प्रौढ़ होने पर हम बच्चों का निष्कपट भोलापन खो बैठते हैं। हम मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को रोक देते हैं। इससे एक बाधा उत्पन्न होती है जो उस शक्ति के मार्ग में रुकावट डालती है जिसे मुक्त करने का हम प्रयास कर रहे हैं। गुरु चाहते हैं कि शिष्य अपनी अभिव्यक्ति की इस स्वतंत्रता को धीरे-धीरे विकसित करे।

गुरु इस बात की परवाह नहीं करते कि शिष्य विद्वान् है या अनपढ़, धनी है या गरीब। ये सभी बाह्य आवरण हैं। गुरु सिर्फ उसके आत्मविकास में गहरी रुचि लेते हैं तथा उससे यही अपेक्षा रखते हैं। इस हेतु शिष्य को मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के मार्ग में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। समर्पण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पूर्ण आत्मसमर्पण होने पर शिष्य के विचार गुरु के साथ एकाकार हो जाते हैं। यदि शिष्य मनमुखी, अवज्ञाकारी और दुराग्रही हो तो गुरु चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते। यह आध्यात्मिक जीवन का एक निश्चित नियम है।

शिष्य द्वारा पूर्ण आत्मसमर्पण के बाद उसका मन गुरु के मन से मिल जाता है। तब न केवल सचेतन अवस्था में, बिल्क ध्यानावस्था में भी उनका मार्गदर्शन मिलने लगता है। गुरु के प्रति पूर्ण एवं अटल आज्ञापालन द्वारा वह अपने चेतन, अवचेतन एवं अचेतन मन को उनका निर्देश ग्रहण करने हेतु प्रशिक्षित करता है। ध्यान की उच्चतर अवस्था में अपनी अनुभूतियों पर शिष्य का नियंत्रण नहीं होता। उस समय उसे गुरु के मार्गदर्शन की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। किन्तु उस 'मनरहित अवस्था' में उनके निर्देशों के प्रति ग्रहणशील होने के लिये शिष्य को उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना होगा। उसे यह याद रखना चाहिये कि यदि वह सचेतन अवस्था में गुरु-आज्ञा का पालन नहीं कर सकता तो अचेतन अवस्था में कदािप ऐसा नहीं कर सकेगा।

आत्मसमर्पण एवं आज्ञापालन का उद्देश्य सभी स्तरों पर गुरु का सक्षम माध्यम बनना है। इसी वजह से आज्ञापालन पर इतना अधिक बल दिया जाता है। ऐसा इसलिये नहीं किया जाता कि गुरु एक निरंकुश स्वामी तथा शिष्य उनका दास है। पूर्णरूपेण आज्ञाकारी शिष्य को ही गुरु आध्यात्मिक शक्ति का हस्तान्तरण कर सकते तथा अपने कार्यों का माध्यम बना सकते हैं। ■



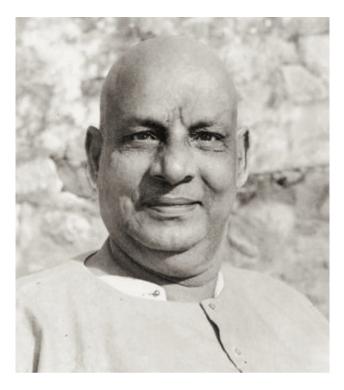
Swami Sivananda Saraswati

Guru is not the human personality; guru is the divine being, the immortal essence that shines through the human person. The perishable body constituted by the physical elements should not be mistaken for the guru. The real teacher is the one Brahman that manifests itself as and when it likes. Man can learn only from a man, and hence God teaches man through a human body.

The human body of the guru is an occasion to worship his universal nature of supreme light, a nail to hang the shirt on. The human side of the guru is not what is important; it is the unseen but the only real *atman*, the ubiquitous principle that underlies it. That is the true guru. When we pray to God, we pray not to a body. When one resorts to a guru, he does not do so at the material form. The dignified substratum of life, light and joy, the grand consciousness that soars above the paltry grandeur of the universe: that is what is to be seen in a guru.

"Hit it, O Saumya," says the Upanishad; that is the target of meditation and the object of devotion: the teacher and the saviour, the support and the goal. Lord Krishna says, "Know me in truth." He emphasizes the fact that his form, the body, is not to be mistaken for eternal. Guru is God and God is guru, and the *Shvetashvatara Upanishad* says that the truth is revealed to that great-souled one who does not consider God and guru to be two different beings.

Though the guru does not actually give anything not already possessed, he becomes the means to dig out the spiritual wealth that is buried under the ignorant mind of the aspirant. It is from the guru that the seeker gets the influx of spirituality and divine bhava. What the aspirant receives, he intensifies and multiplies a thousandfold through earnest sadhana. This is the duty of all aspirants. The guru is the



gateway to the transcendental truth-consciousness, but it is the aspirant who has to enter through it. The guru is a help, but the actual task falls on the aspirant himself.

In truth, the guru dwells in your heart. The guru is ever by your side. You have only to think of him with real bhava and you will at once feel his spiritual presence without fail. In proportion to the effacement of the lower ego does the guru manifest in you and appear before you. Therefore, be ever ready to receive him and empty yourself of all contents so that he may fill himself in you.

Guru Poornima is the moment for you to invoke and rouse up the sadhana shakti in you through an intense renewal of guru bhakti, and by sincerely surrendering afresh the impure self-will and ahamkara. May you attain self-realization through guru bhakti and faithful and sincere practice of the teachings of your preceptor.

उनके अद्भुत दर्शन

मीहन शाह, भुज (गुजरात)

स्वामीजी की असीम कृपा से 2013 खूब अच्छा रहा और 2014 की शुरुआत सबसे अच्छी रही। जनवरी-फरवरी स्वामीजी के सान्निध्य में रहने का मौका मिला।

2 फरवरी की शाम को मुंगेर पहुँचे। 3 फरवरी का पूरा दिन श्रीयंत्र आराधना के कार्यक्रम में बीता, बीच में स्वामीजी के दर्शन करने अखाड़ा में जाने का मौका मिला।

4 फरवरी, बसंत पंचमी के दिन सबेरे कार्यक्रम में स्वामीजी के दर्शन हुए और शाम को अखाड़े में मिलने का समय मिला। अखाड़े में पहुँच गया मगर स्वामीजी किसी जरूरी कामकाज में व्यस्त रहे।

अगले दिन सुबह 11 बजे अखाड़े में बुलाया, पहुँच गया मगर तब भी कार्य में व्यस्त। शाम को 4.30 बजे वही सिलसिला रहा। 6 तारीख का एक दिन बचा था, निराशा नहीं थी, उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

6 तारीख को सुबह अखाड़े में पहुँचा, स्वामीजी पंचाग्नि साधना में व्यस्त थे। मैं एक तरफ बैठा था कुछ सोच में, इतने में शरणागत की तरफ से प्रकाश का एक चमचमाता गोला प्रकट हुआ और मेरी तरफ आने लगा। आँखें चकाचौंध हो गईं। गोला पास आकर रुक गया।

मैं कुछ सोचूँ, इससे पहले

चरण दिखाई दिये। मैंने झुक स्पर्श करते ही पूरे शरीर

लगा, जैसे मेरे शरीर में हलचल हो रही हो।

और परमहंसजी का आया। मानो रण-अर्जुन को श्रीकृष्ण

हैं। मैंने मानो नया आधि-व्याधि-उपाधि

हर रात को प्रकाश

है, मानो किसी ने मेरे ढालना शुरू कर दिया

मेरे जीवन के आमूल परिवर्तन

मेरा शरीर नीचे झुका और मुझे

कर चरण स्पर्श किये और

में विद्युत-सा झटका कोई अलग प्रकार की

> मैंने मुख ऊपर किया हँसता चेहरा नजर भूमि में विषादग्रस्त जी दर्शन दे रहे

> जन्म पाया। मेरी हर

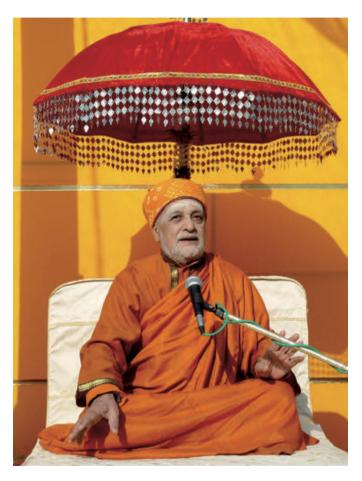
गायब हो गई। अब पुंज का दर्शन होता

जीवन को नये ढाँचे में है। जिन्दगी का यह मोड

का सुंदर नजारा बन गया है।

Luminous Souls

Swami Satyananda Saraswati



The guru is a soul. Everyone has a soul; someone has an expansive soul, someone has a constricted soul, someone has a bright soul, and someone has a dim soul. The one whose soul is luminous is guru. The body is not guru. It is the soul residing in the body who is guru, and that is who is worshipped, not the body.

The disciple is not the body, either. The soul within you is the disciple. The body and soul are two different things in the same way as this house and I are two different things. I live in this house, but am I the house? No, we are different. The body is called *deha* and the one who lives in it is called *dehi* or atman. And there are some whose *atman* or soul is luminous and great. Some souls are dark, some demonic, some divine, some saintly. Atman is a quality, and the one whose soul is of a very good quality is called 'guru'.

Guru is one who provides light, who dispels darkness. The external, physical relationship between guru and disciple is nothing. That is what is visible, that is all. The real relationship is of the soul, and the soul relates through *bhakti* and *shraddha*, devotion and faith. This relationship is not formed by living with the guru; it is formed through devotion and faith. When the disciple has devotion to and faith in guru, he does not need to be in his physical presence. Souls do not have physical distance. You can receive electricity from the powerhouse in your room. It is always there, even though the electricity does not belong to the room, even though the poles are different. The body experiences distances, not the soul. This is the truth, but understanding it and experiencing it are two different things. To get the experience you must contemplate ceaselessly: 'Who am I?' 'What is the soul?'

Are you a woman? No, your body is that of a woman. You are someone's wife: that is a physical relationship. But the soul within you is not that of a woman or a man, it is not Hindu or Muslim, Marwari or Bihari. It is just the soul. The soul does not have any race, religion or country, because its form is luminosity.

The form of atman is light. It is called *Satyam-Shivam-Sundaram* (truth-auspiciousness-beauty) or *sat-chit-ananda* (truth-consciousness-bliss). However, in reality, to live in the world we need someone to show us the way. So for such illumination of the path, the guru appears before the disciple in the form that the disciple wants to see, in the form of a body.

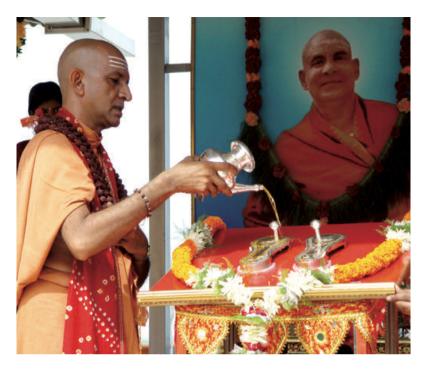
The True Disciple

Swami Niranjanananda Saraswati

There are two types of disciples in the world: those who have their own agendas and those who have no agenda of their own. Those people who have their own agendas associate with their guru for a limited time, extract whatever they want to extract from the guru, and then they go their own way to fulfil their own ambitions and needs. Then there is the other group of people who have no agenda of their own; who simply live for the sake of living with guru. They make the vision of guru their own vision, the agenda of the guru their own agenda, and they become one with the guru tattwa over a period of time, as they identify more and more with the vision and the mission of the guru. Decide and look at yourself and find out in which category you fall: a person with no agenda or a person with their own agendas?

The group of disciples that gathered around Swami Sivananda when Sri Swamiji went to live with him were people who had no agenda of their own. They just wanted to live in the presence of the master, and they surrendered their life to their master. Do you know what the meaning of surrendering life is? Surrender the ambitions, the youth, the needs, and identify only with the vision, the needs and the aspirations of the guru. That surrender is not easy, as that surrender makes you lose yourself completely, finished. The only thing alive in your memory and mind is the guru.

The group of disciples who came to Swami Sivananda lived that kind of life. They became the foundation stones of the Divine Life Society and propagated the vision and the mission of their master. Swami Sivananda initiated hundreds and thousands, however, only a few names stand out; they were the ones who did not have personal agendas, and were committed to spreading the light as guided and instructed by



their guru. Sri Swamiji was one of them. That is the type of discipleship he lived. He was not attached to anything: comfort, luxury, post or position.

When I first came to the ashram in the early sixties, along with the other group of sannyasins, what did we want to do? We did not want to become yoga teachers. We did not even know what sannyasa was. We had only one awareness, we had only one aspiration: we wanted to be with our guru, that was all. We did not mind whether we ate or starved. We did not mind whether we had clothes to wear or nothing to wear. We did not mind whether we had clothes to wear or nothing to wear. We did not mind whether we were taught anything officially, formally, in a class, or just told to work twenty-four hours of the day like a donkey. No, that was not our agenda. Many people who are still following the path of sannyasa and discipleship fall in that category. Whatever we learnt was due to the opportunity given to us to express our ability.



Now, this is one group of people who identify with the vision and the mission of their guru and have no personal life or agenda. There is another group of people, the so-called disciples, who have their own agendas. Some become disciples as they see yoga and the ashram as an opportunity to launch their own career in life, who want to take training to become a sannyasin, a karma sannyasin. Then they go back and establish their own ashrams and centres, and in the garb of selfless service to humanity, they live their own ambitions. They use yoga, the ashram and guru as their launching pad to establish themselves in life. There is no intention of even identifying with the vision or the mission of the guru. Many people fall in that category today.

Then there are people who want to be propped up and given a post, power and position, who fight with everybody for respect, and tell people, "I am a senior. Give me your respect."

Those people are guided by their ambitions and ego, and they want to be propped up, "You are this", "You have this authority", "You have this power", "You have this position", without even being capable of maintaining the dignity of the post they wanted. They expect the ashram, the guru and yoga to provide them that opportunity and that post. Without having any ability and maturity of their own they wish to be recognized and worshipped by all as somebody great. That is another group of disciples, who do not identify with the vision or mission, yet want themselves to be propped up.

Another group of disciples are always crying and becoming over-dependent. They are not working to improve themselves; they are expressing negativity towards themselves. As they encounter the cleaning of their emotions, mind and spirit, and as the stuff which is there as samskaras, karmas and archetypes of so many lifetimes surfaces, they fall prey to the influences of those samskaras or archetypes. They lose their balance, as they have never made the attempt to correct or rectify their own defects in life. A disciple is one who corrects and rectifies their own mistakes in life, and tries to become better the next day, tries to become better in the next step that he takes or she takes, rather than falling prey to the whims of the mind, the desires and passions. The constant effort to improve is lacking in the personalities of disciples today.

Therefore by taking initiation, do not call yourself a disciple. By wearing geru, do not call yourself a disciple. As long as you have your personal agenda, do not call yourself a disciple. You are only an opportunist, an opportunist in the garb of a disciple, a donkey in the garb of a tiger. A real disciple is one who identifies with the spirit of the guru and lives that spirit. Sri Swamiji was one such person who identified and lived the principles, the teachings and the spirit of his guru, and that is my sankalpa too. Therefore I call him my guru. You call him your guru as he is nice to you; I call him my guru as it is an inspiration for me to become like him. It is that memory which I hold most dear in my life.

कृपा अनुभव जी प्रत्यक्ष था

संन्थासी सत्यसंकल्प, रायपुर (छ.ग.)

लम्बे समय से मुझे संन्यास की 'चाहत' रही। इसके लिए किसी-न-किसी माध्यम से मैं स्वामी निरंजनानन्द जी को संदेश भेजने की कोशिश करता रहा। इस बीच यह भावना दुर्बल-प्रबल होती रही और एक दुर्बल क्षण में मेरा विवाह भी हो गया। पिछले कुछ वर्षों से मैंने गंभीरता से परमपूज्य परमहंस सत्यानन्द जी और परमहंस निरंजनानन्द जी की आराधना की। ध्यान में बैठा, अनेक अनुभव हुए जो शब्दों में बयान नहीं हो सकते। इस बीच एक बार फिर संन्यास की इच्छा बलवती हुई और लगा कि मैं नियंत्रण से बाहर हो रहा हूँ।

गुरु कृपा से मेरी बात गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर राजनाँदगाँव से मुंगेर जाने वाले किसी भक्त से हुई। संन्यासी का पूरा विश्व रिश्तेदार होता है, और इसलिए बिना हिचक मैंने संन्यास प्रदान करने हेतु स्वामी निरंजनानन्द जी को एक पत्र लिख दिया और भक्त के हाथ मुंगेर भिजवा दिया। उस दिन अजीब-सा लग रहा था, मैंने अपने अखबार के दफ्तर से अवकाश ले लिया। शाम को मुंगेर से संदेश मिला, 'पत्र स्वामीजी को मिल गया है।'

12 जुलाई की रात साढ़े ग्यारह बजे का समय था। मैं सीताराम अर्चना पुस्तिका में 'राम' नाम लिख रहा था, अचानक शांति छा गई और परमहंस निरंजनानन्द जी की आवाज सुनाई दी, 'चल लिखता जा।' मैं कुछ समझ न सका, पर पास रखी डायरी में कुछ लिखने लगा। मैं कब तक बेहोश-सा रहा पता नहीं, लेकिन एक अद्वितीय संदेश दिखा, वह भी छंदबद्ध, जबिक साहित्य से मेरा कभी सीधा सम्बन्ध नहीं रहा। वह दिव्य संदेश जो मिला, इस प्रकार था—

बीच भंवर संसार का, अनिगन बाधा आय। परमातम किरपा करे, कोऊ रोक न पाय॥ पानी बरसे मेघ से, अस गुरु ज्ञान बताय। काजल की कोठी भली, हीरक चमक न जाय॥ कहे निरंजन सुन रे भाई, जगत-जुगत सब माया। माया-मानिक बीच भलाई, ते संन्यास कहाया॥ कहे निरंजन सुन रे भाई, का खोया का पाया। सकल करम निरमल मन से कर, मुक्त भये सब माया॥ जब बाजे डमरू शंकर का, चले सर्पिनी चाल। का आश्रम औं का घर भाई, खुले कुंडली हार॥

आँख खुले ते आश्रम देखा, गिरहस्ती ना जाना।
प्रभु किरपा जे होनी होवे, सब संन्यास समाना॥
गुरू की बानी तीर कमानी, आतम भेदत जाय।
सुमर परिस्थिति कोऊ भी हो, पक्का मोक्ष दिलाय॥
कहे निरंजन मिले बुलावा, कोऊ रोक न पाय।
तब तक भाई सेवा करले, चाहे जनम बिसाय॥

यह सब क्या था, कैसे हुआ, मैं नहीं जानता, लेकिन जीवन जीने का एक नया उत्साह हृदय में समा गया। यह गुरु का महाप्रसाद नहीं तो और क्या था!■

शिष्य के उद्गार

पूज्य स्वामीजी,

सादर साष्टांग चरण स्पर्श। इस बार भागवत कथा के अवसर पर मुंगेर प्रवास एक अद्भुत, अवर्णनीय अनुभव

रहा। आपका ऐसा स्वरूप पहले कभी नहीं देखा था। बाल मन, निश्छल, निरागस स्वभाव, पर स्वभाव में समुद्र की गहराई का आभास। व्यक्तित्व में हिमालय की ऊँचाई, पर बच्चों के साथ उनके स्तर पर आकर व्यवहार करने की क्षमता। अन्य संतों एवं संन्यासियों के साथ अत्यंत विनम्रतापूर्वक व्यवहार करते हुए भी स्वभाव और अनुशासन



में हीरे जैसी कठोरता। और जनसामान्य भक्तों एवं शिष्यों के प्रिति माँ जैसी ममता! कभी ईश्वर, कभी साक्षात् शिव, कभी गुरु, कभी सखा तो किसी-किसी के लिए पुत्र जैसा स्वरूप पहले कभी देखा न था। हम सभी शिष्य ईश्वर को पुन: पुन: धन्यवाद देते हैं कि स्वामी शिवानन्द जैसे परम गुरु, परमहंस जी जैसे सद्गुरु और आप जैसे आत्मीय गुरु हमें प्राप्त हुए। निश्चय ही अनेक जन्मों के पूर्व संचित पुण्यों का यह प्रतिफल है।

> आपका, मार्कण्डेय (डॉ. जितेन्द्र जामदार, जबलपुर)

The Lion and His Pride

Who cares about the world? Who cares for the soul? The one who really does Does not protest change. The one who really does Teaches others to accept it with faith. Here I live with one such man Who teaches in silence for the good of mankind. He leads by example An austere life filled with penance and joy. He makes us pray And bow our heads with folded hands. He makes us swav to the beat of his crystal band. We learn to watch and act without a start We learn to look at what's beyond the stars. He paves the way for each of us So we may stumble but never stop. We walk behind him - hand in hand We walk behind him like the pride follows the lion. Here I live with one such man Who teaches in silence for the good of mankind. -Sannyasi Atmagyanam, Sannyasa Trainee, India

Letter from a Disciple

Swamiji,

On 1st June 2012, I suffered a heart attack. It came suddenly, without any prior indication or problem. That night around 2 am, I felt a sudden pain in the back. I informed a relative and she took me to the hospital to check my back in case of spinal problems. There they informed her that at that time I was going through a heart attack and that I needed an operation immediately, because it was serious and the left artery near the heart was blocked.

During the operation I had a strong feeling that it was my time to leave this world. I was calm, without fear. But my beloved Guru had another idea on this. I knew that he did not want me to leave yet. The operation was successful. When I was taken to the intensive care unit after the operation, I started to have a sublime experience. I saw a very sweet, elderly man standing just outside the ICU. He was wearing ordinary clothes and seemed to be of Indian origin. He was guarding the door of the room where I was lying.

Then I had the following vision. I saw a large hall. The entrance to the hall was guarded by the same man who was guarding the door of the ICU. He was standing at the entrance of the hall. Then I saw Paramahamsaji and a very tall man who was wearing black and had a white beard. I ran to Paramahamsaji to do pranam, but he put up his hand to stop me. I heard him say to the man in black, "We came to you to offer you our thanksgivings because you have kept Swami Jnanamudra alive." Then this noble, sweet man turned to me and gave me a smile. At that point, Paramahamsaji told me to go.

After this vision my recovery was spectacular. It was as if a new energy and purpose had entered into my life. Deep inside my soul, I feel grateful to my sweet Guru, because he gave me a second chance to live amongst you, to breathe, to live, and to sing and dance for my beloved Guru, Paramahamsa Satyananda.

With deepest gratitude,

Swami Jnanamudra, Satyanandashram, Greece



Eternal Teachings of the Scriptures

SRI GURU GITA

Na guroradhikam na guroradhikam na guroradhikam na guroradhikam;

Shivashaasanatah shivashaasanatah shivashaasanatah shivashaasanatah.

There is nothing greater than guru, there is nothing greater than guru, there is nothing greater than guru, there is nothing greater than the guru. By the command of Shiva (I say this), by the command of Shiva (I say this), by the command of Shiva (I say this), by the command of Shiva (I emphasize this). (v. 122)



BHAGAVAD GITA

Tadviddhi pranipaatena pariprashnena sevayaa; Upadekshyanti te jnaanam jnaaninastattvadarshinah.

Understand the true nature of knowledge by approaching an illumined soul. If you prostrate at their feet, render them service and question them with an open and guileless heart, those wise seers of truth will instruct you in that knowledge. (4:34)



SRI RAMACHARITAMANAS, BALAKANDA

Bandau guru pada kanja kripaa sindhu nararoopa hari; Mahaamoha tama punja jaasu bachana rabi kara nikara.

I bow to the lotus feet of my Guru, who is an ocean of mercy and is no other than Sri Hari Himself in human form, and whose words are sunbeams as it were for dispersing the mass of darkness in the form of gross ignorance. (So. 1:5)

SHVETASVATARA UPANISHAD

Yasya deve paraabhaktih yathaa deve tathaa gurau; Tasyaite kathitaa hyarthaah prakaashante mahaatmanah.

He whose devotion to the Lord is great, and who has as much devotion to the guru as to the Lord, unto him, that high-souled one, meanings of the sacred texts stand revealed. (6:23)



ANANDABINDU UPANISHAD

Bhoh poojyaa gurucharanaah madavidyaavibhettaarah santu vo vandanaani mama;

Yushmatprasaadena shaashvatam brahmasukham anubhavaami; Idaaneemaham sarvasmaadakaatarah;

Mama sandehaah bhramaashcha dhvastaah.

O Revered Teacher! You are the dispeller of my avidya, my adorations to you! Through your grace, I am enjoying the eternal bliss of Brahman. I am absolutely fearless now. All my doubts and delusions have vanished. (v. 16)



ADVAYATARAKA UPANISHAD

Gurureva param brahma gurureva paraa gatih; Gurureva paraa vidhaa gurureva paraayanam.

Only the guru is the ultimate Brahma, Only the guru is the final destination, Only the guru is the final knowledge, One should always be devoted to the guru only. (v. 17)

प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिका

जगद्गुरु श्री आदिशंकराचार्य की गुरु-शिष्य संवाद रूपी इस रचना में अनेक आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान सूत्र रूप में दिया गया है। यह संवाद साधकों के चिंतन, मनन और स्वाध्याय के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, इस आशा के साथ यह यहाँ धारावाहिक रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है। गतांक से आगे...

कः पंगुरिह प्रथितो व्रजति न यो वार्धके तीर्थम्। किं तीर्थमपि च मुख्यं चित्तमलं यन्निवारयति॥34॥

प्र-इस संसार में कौन पंगु प्रसिद्ध है?

उ—जो वृद्ध होने पर भी काशी आदि स्थावर तीर्थ और सन्त-महात्मा रूपी जंगम तीर्थ में पाप-निवृत्ति के लिये नहीं जाता।

प्र-मुख्य तीर्थ कौन-सा है?

उ-जो चित्त के मल का निवारण करे।

किं स्मर्तव्यं पुरुषैर्हरिनाम सदा न यावनी भाषा। को हि न वाच्य: सुधिया परदोषश्चानृतं तद्वत्॥35॥

प्र-मनुष्यों को हरदम किसका स्मरण करना चाहिये?

उ-श्रीहरि (ईश्वर) के नाम का; असभ्य, अनीश्वर वाणी का नहीं।

प्र-बुद्धिमान् मनुष्य को क्या नहीं कहना चाहिये?

उ-दूसरों का दोष और झूठी वाणी।

किं संपाद्यं मनुजैविद्या वित्तं बलं यश: पुण्यम्। क: सर्वगुणविनाशी लोभ: शत्रुश्च क: काम:॥36॥

प्र-मनुष्यों को क्या अर्जित करना चाहिये?

उ-विद्या, धन, बल, कीर्ति और पुण्य।

प्र-सर्वगुणों के विनाश करने वाला कौन है?

उ-लोभ।

प्र—शत्रु कौन है?

उ–काम।

का च सभा परिहार्या हीना या वृद्धसचिवेन। इह कुत्रावहित: स्यान्मनुज: किल राजसेवायाम्॥37॥ प्र-किस सभा का त्याग करना चाहिये? उ-जो धर्मवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध मन्त्री से रहित है। प्र-मनुष्य को कहाँ विशेषरूप से सावधानी रखनी चाहिये? उ-राजसेवा में।

> प्राणादिप को रम्यः कुलधर्मः साधुसंगश्च। का संरक्ष्या कीर्तिः पतिव्रता नैजबुद्धिश्च॥ 38॥

प्र-प्राणों से भी अत्यन्त प्रिय कौन है? उ-कुल का धर्म और साधु पुरुषों की संगति। प्र-अति प्रयत्न से कौन रक्षा करने योग्य है? उ-कीर्ति, पतिव्रता स्त्री और अपनी विवेकबुद्धि।

> का कल्पलता लोके सच्छिष्यायार्पिता विद्या। कोऽक्षयवटवृक्षः स्याद्विधिवत्सत्पात्रदत्तदानं यत्॥ ३९॥

प्र—इस लोक में कल्पलता क्या है? उ—योग्य शिष्य को दी हुई विद्या। प्र—अक्षय वटवृक्ष क्या है? उ—विधिपूर्वक सत्पात्र को दिया हुआ दान।

> किं शस्त्रं सर्वेषां युक्तिर्माता च का धेनु:। किं नु बलं यद्धैर्यं को मृत्युर्यदवधानरहितत्वम्॥४०॥

प्र-सभी के लिये शस्त्र क्या है?

उ–युक्ति।

प्र-माता क्या है?

उ-गाय।

प्र–बल क्या है?

उ-धैर्य।

प्र-मृत्यु क्या है?

उ-सावधानी से नहीं रहना।

कुत्र विषं दुष्टजने किमिहाशौचं भवेदृणं नृणाम्। किमभयमिह वैराग्यं भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम्॥४।॥

प्र-विष कहाँ है? उ-दुष्ट मनुष्य में। प्र–मनुष्यों के लिए अपवित्र क्या है?

उ-ऋण।

प्र–संसार में अभय क्या है, और सबके लिये भय क्या है?

उ-वैराग्य अभय है और धन भय।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्ति: पातकं च किं हिंसा। को हि भगवित्रप्रय: स्याद्योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्न:॥४२॥

प्र-मनुष्यों को दुर्लभ क्या है?

उ-श्रीहरि की भक्ति।

प्र-पाप क्या है?

उ-मन, वाणी एवं शरीर से होने वाली हिंसा।

प्र-भगवान को प्रिय कौन है?

उ-जो स्वयं उद्वेग से रहित है, और अन्य को कदापि उद्विग्न नहीं करता।

कस्माित्सिद्धिस्तपसो बुद्धिः क्व नु भूसुरे कुतो बुद्धिः। वृद्धोपसेवया के वृद्धा ये धर्मतत्त्वज्ञः॥४३॥

प्र-किससे सिद्धि होती है?

उ-तप से।

प्र-बुद्धि कहाँ है?

उ-भूदेव-ब्राह्मण में।

प्र-बुद्धि कहाँ से प्राप्त होती है?

उ-वृद्धों की सेवा से।

प्र-वृद्ध कौन हैं?

उ-जो धर्म-तत्त्व को जानने वाले हैं।

संभावितस्य मरणादधिकं किं दुर्यशो भवति। लोके सुखी भवेत्को धनवान्धनमिप च किं यतचेष्टम्॥४४॥

प्र-प्रतिष्ठित मनुष्य के लिए मरण से भी अधिक दु:खदायक क्या है?

उ-अपयश।

प्र–संसार में सुखी कौन है?

उ–धनवान्।

प्र-और वास्तव में धन क्या है?

उ-संयमपूर्वक आहार-विहार यानी सदाचार।

Meditation on Guru's Feet

Now I have fallen in love with Guru's feet, I want nothing but the shelter of his sacred feet.

-Mirabai

Guru's feet represent the force of Guru's spiritual shakti, and remembrance of his feet brings us into direct contact with that spiritual energy field. For Sri Swami Sivananda there was no greater act than meditating on the feet of one's guru, and he recommended it as a daily sadhana for all serious aspirants.

The following meditation can be practised in the morning and evening, in combination with your daily japa sadhana. To begin, place a photo of Guru's feet on a table or hang it on the wall at eye-level. Sit in a meditation posture, hold your mala in one hand, and allow the whole mind and body to become relaxed, steady and still. Gently open the eyes and let them fall on the image of Guru's feet.

Keep the eyes relaxed with the gaze steady and focused. Let everything around you fall away until there is nothing left except you and the feet of Guru. Experience the power of Guru radiating from the image. You may experience it in the form of golden light or bright colours, or as a physical or pranic sensation. Make a connection with the energy of Guru and then begin to focus on the breath.

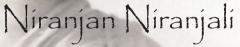
Begin to mentally chant your guru mantra in time with the incoming and outgoing breath. If you do not have a guru mantra, you may use *Om Sri Gurave Namah*, an exalted salutation to Guru. Synchronize repetition of the mantra with the breath, while continuing to gaze gently at the image of Guru's feet. Experience the mantra, the breath and the energy of guru merging and becoming a part of you.

When you have completed your mala, gently close the eyes and mentally see Guru's feet take form at the heart centre, *hridayakasha*. Imagine that beside his feet is a basket filled with

beautiful, fragrant flowers. Begin to recount Guru's many divine and virtuous qualities. Choose eleven that you find particularly inspiring, and with each quality mentally remove a flower from the basket and place it lovingly at his feet. With each flower offered, feel that you are planting a seed so that this same quality may take root inside of you. Flower by flower, experience his essence inspiring you toward greater peace and joy. When you have completed your offering, observe the beautiful flower-laden feet, and bring your hands into pranam mudra, bowing in gratitude for the blessing of Guru's presence in your life.

When you are ready to end the practice, release the image of Guru's feet from hridayakasha and externalize, knowing that you may draw on Guru's inspiration at any moment and that this will guide you toward deeper peace and understanding. Let that inner knowledge lead to truth, beauty and bliss during each and every day.





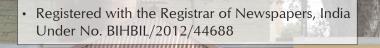
(A Floral Offering)

On the loftiest peak of the greatest mountains, Or down the sacred path of the celestial river, Messenger of peace, harbinger of spirituality, The earth takes pride in you, The eternal, the beautiful, I salute thee O Satyam, I salute thee.

By the dust of your feet, or those
Of your bhaktas numberless.
O Compassionate One, I shall be redeemed,
The longing of my soul shall be no more,
Guru of the earth entire,
O Satyam, I salute thee.

Luminous one, you are supreme truth-consciousness-bliss, and Alas, we, burdens on the mortal world! O Satyam, Master, accept These flowers of my faith and love. With a heart drenched in devotion, united, With mere blossoms in my hands, O Satyam, I salute thee.

–Swami Niranjanananda, July 1969



Sannyasa Peeth Events & Courses 2014–2015

Apr-Oct
Aug 1-Jan 25
Sep 8-12
Jan 13-15
Jan 21-28
Jan 24-Jan 2016
Feb 1-July 25
Jul 17-25
Aug 1-Jan 25

Sep 8-12

All-India Yoga Yatra
6-month Gurukul Lifestyle Course
Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna
Satsangs by Swami Girishananda
Magha Adhyatma Samskar Sadhana Satra
1-year Sannyasa Training
6-month Gurukul Lifestyle Course
Ashadha Adhyatma Samskar Sadhana Satra
6-month Gurukul Lifestyle Course
Sri Lakshmi Narayana Mahayajna

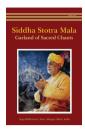
For more information on the above events, contact:

Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Munger, Bihar 811201, India Tel: 06344-222430, 06344-228603, 09304799615 Fax: 06344-220169 Website: www.biharyoga.net

M A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request



Chants & Stotrams

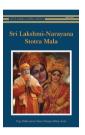


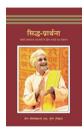












It is said that even an accidental utterance of the name of the Lord destroys all one's sins. These books containing chants and stotras extol the names of the many manifestations of divinity, and invoke the cosmic principle through sound, song

and feeling. Some are ancient verses penned by rishis and sages in the Vedas, Puranas and Tantras, and others are more recent creations of devotees and disciples. The books contain the chants that are regularly practised at the Bihar School of Yoga, and offer a unique and potent way to connect with the spirit of the ashram.

For an order form and comprehensive publications price list, please contact: Yoga Publications Trust,

Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811 201, India Tel: +91-6344 222430 , Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.



उर्गावाहन एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी योगमाया सरस्वती सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती संन्यास पीठ, द्वारा-गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित। थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मृद्रित।

© Sannyasa Peeth 2014

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

संन्यास पीठ

द्वारा-गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, भारत

अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर फोटो: गुरु पूर्णिमा, पादुका दर्शन, मुंगेर अन्दर के रंगीन फोटो: 1 & 4: स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 2 & 5: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती; 3: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती; 6: गुरु पादुका पूजन, रिखिया; 7: गुरु पादुका पूजन, मुंगेर; 8: गुरु पूजा, सत्यम् उद्यान, 2011